

विषयसूची

क्र.	विषय	पृ.
१	मदलानरत्न तथा हारी के नाम	१
२	नयनार के अन्तर्गत भेद ११	२
३	अन्तर्गत में-१ नामहार और २ माध्याहार	२
४	७ नयों के लक्षण	३—४
५	नैमग्न और सग्न नय का स्वरूप	४—५
६	व्यवहारसमुत्तम और शब्द नय का स्वरूप	५—६
७	समभिरु और एवभूत का स्वरूप	६—११
८	लक्षणाहार	११—१२
९	नैमग्न नय के भेद	१३—१४
१०	समग्न नय के भेद	१५—१६
११	व्यवहार नय के भेद	१६—२०
१२	समुत्तम नय के भेद	२०—२१
१३	माध्या समभिरु और एवभूत नय का एक एक भेद	२१
१४	नैमग्न नय के तीन भेद	२२
१५	सग्न नय के तीन भेद	२३—
१६	व्यवहार और समुत्तम नय के दो दो भेद	२३
१७	शब्द समभिरु और एवभूत नय का एक एक प्रकार २३—२४	२३—२४
१८	सात नयों के पायली वस्त्रों और प्रदेग के दृष्टान्त २५—२६	२५—२६
१९	जीव धम तिलक समाधिक और बाह्य पर	
	सात नयों का प्रवर्णन (उतारना)	२६—४०
२०	उपार्थिक और पय पार्थिक नय के भेद	४०—४१
२१	सात भेद हार	४१—४२
२२	सात नयों के ७०० भेद	४२ ५०



सात नयों का धोकड़ा

वीरं प्रणम्य सर्वज, गौतम गणितं तथा ।
नयानां क्रियते व्याख्या, स्वात्मानुग्रहेनैव ॥१॥

आकृत्योगद्वार त्व में सात नयों का अधिकार
बला है वह इच्छास डार कर के अनेक स्थल में बगिन
है उस अधिकार को कहते हैं—

२६ प्रयोग है नाम

१ नयधार, २ निक्षेपधार, ३ श्रव्यगुणवर्षाण,
४ श्रव्यश्रेष्ठकालभाज, ५ श्रव्यभाज, ६ कारणकार्य,
७ निक्षेपव्यवहार, ८ उपादान तथा निमित्तकारण,
९ प्रमाद १, १० गुरुगुणी ११ सामान्यविशेष,
१२ श्रेष्ठज्ञानज्ञानि १३ उन्मत्तव्ययष्टुव १४ आधारा-
देव, १५ आधिर्भावनिरोभाज, १६ सुदयना और

गौतमा, १७ उन्मर्गापवाद, १८ आत्मा ३, १९ ध्यान ४,
२० अनुयोग ४, २१ जागरणा ३ ।

प्रथम नगर के अन्तर्गिरि (भेद) ११.

१ नामद्वार, २ शब्दार्थद्वार, ३ स्वरूपद्वार, ४ लक्ष
गद्वार, ५ भेदद्वार, ६ इष्टान्तद्वार, ७ नयावतारद्वार,
८ तत्प्राप्तिकर्माप्राप्तिकद्वार, ९ सममर्तुद्वार, १० सात
नगा के १०० भेद द्वार ११ निश्रयव्यवहारद्वार ।

अन्तर्गिरि में—१ नाम द्वार.

सात मुख्यनगा १ नाम कहते हैं— १ नैगमनग,
२ न्यग्रनग ३ उपगारनग, ४ कर्तृमुत्रनग ५ जाल-
नग ६ न्यमिस्तनग ७ पंचननग ।

२ शब्दार्थद्वार

प्रायः नगद्वार का अर्थ मिलने ४ ज्ञानार्थ,
५ ध्यान अर्थ का ज्ञान करनेवाला अर्थ उस का प्रमाण
कहे ४ धनवा ५ रूपान्तर वातु का परिनिन्द्य माने
६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

को जैसी को तैसी स्थापना करे वही प्रमाण कहा जाता है, उस प्रमाण के दो भेद हैं—सविकल्प और निर्विकल्प। जो इन्द्रियद्वारा प्रवर्तित होने वाले मति श्रुत व्यवधिमना-पर्यय ज्ञान स्वरूप हो वह सविकल्प है और जो इन्द्रियार्थात् केवलज्ञान रूप हो वह निर्विकल्प है। इस प्रकार प्रमाण के अर्थ जानना। और जो इसी प्रमाण के द्वारा गृहीत (ग्रहण की हुई) वस्तु के एक अंश का ज्ञान कराने वाला हो उस का नय कहते हैं। अथवा ज्ञाता (जानने वाले) का जो अभिप्राय है वही नय कहा जाता है और नाना स्वभाव में लेकर वस्तु का एक स्वभाव से स्थापित कर उसका तथा वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञान का नय कहते हैं।

नयी के प्रमाण

जो विकल्प से संयुक्त हो वह नंगमनय १। जो अभेदरूप से वस्तु को ग्रहण करे वह संग्रहनय २। जो

१. इसके अन्य स्थल में हम भी लक्षण कहें हैं, जैसे एक वचन में एक अवयवमात्र उपयोग में ग्रहण था उस का सामान्य रूप होने से वस्तु को ग्रहण कर वह संग्रहनय, अथवा सब भेदों को सामान्य होने पर ग्रहण कर वह संग्रहनय, अथवा 'संग्रहणेति संग्रह' जो समुदाय अर्थ ग्रहण को वह संग्रहनय कहा जाता है।

इस (संग्रह) नय से जिस जिस अर्थ को ग्रहण करें
 सन्तों अर्थों के भेद करके वस्तु का फैलाव करें वह
 व्यवहार नय ३। जो सरल भांति सूचना करें वह क्रजु-
 स्रव नय ४। जो शब्द व्याकरण से प्रकृतिप्रत्यय द्वारा
 सिद्ध हो वह शब्द नय ५। जो शब्द में भेद होते हुए
 भी अर्थ का भेद नहीं हो जैसे- शक इन्द्र पुरन्दर
 आदि, वह समभिन्न नय ६। और जो क्रिया के
 प्रभाव पड़ें हो वह एवम्भन नय ७ कहा जाता है।

३ स्वरूपज्ञान

सम्यक् नय वाला पदार्थ को सामान्य मानना है विशेष नहीं, तीन काल की जान मानना है, निक्षेप-
वार मानना है, सम्यक् सम्यक् में वस्तु को ग्रहण करे,
इस पर दान्त का दृष्टान्त, जैसे किसी साहूकार ने अपने
अनुचर (दास) को कहा कि दान्त लाओ, तब वह
दास ' दान्त ' ऐसा शब्द सुनकर दान्त नहीं दन्त-
मञ्जन कृष्ण जिम्मे दारी काव कांगता रुमाल पाग
पोशाक जन्कार इत्यादि दान्त की सब सामग्री ले
आया । इस प्रकार सम्यक् नय वाला एक शब्द में
अनेक वस्तु को ग्रहण करे जैसे वन को वन कहे परन्तु
वन में वस्तु अनेक हैं ।

सम्यक् नय

३ ।

सम्यक् नय वाला पदार्थ को विशेषरूप से सामा-
न्य मानना है, तीन काल की जान मानना है, निक्षेप-
वार मानना है, तथा जो वस्तु का विवेचन करे अर्थात्
भेद करे उस को व्यवहार करने हैं जैसे-जीव के दो

वह बोलती है कि मेरे समरेजी पंमारी बाजार में
 सठ मिरन विगेरे मरीदने को गये हैं, तब उस पुरुष
 ने पंमारी बाजार में जाकर मेठजी की तलाश की
 मगर वहाँ नहीं पाये तो पीछा आकर फिर पूछता है
 कि बार् ! वहाँ तो मेठजी नहीं मिले मन् यनाइये कि
 मेठजी कहाँ गये हैं? तब वह बोलती है कि मेरे सम-
 रेजी माया के पहाँ जूने मरीदने को गये हैं, तब उस
 पुरुष ने मायिया के बाजार में जाकर तलाश की तो
 वहाँ भी मेठजी नहीं पाये तब पीछा वहाँ आया
 तो इतने में मेठजी की सामायिक परी हो गई थी,
 मेठजी सामायिक पाइकर उस पुरुष में मिल और
 वह न जान कर उस की माया दा और १२ की वजह से
 कहने लगे कि वह 'न' जानती था कि समरेजी माया
 जिस प्रकार बिद्वन्ना किराये के उत्तराश्रय दिया जाता है
 तब तब वह न समझा उत्तर दिया कि आप का मन
 इस प्रकार समझा है मन् यना माना है मन् यना भा
 दुल्लभ है कि यह न समझा दिया गया । उस प्रकार
 वह बोलती है कि मैं जानती हूँ कि आप का मन
 इस प्रकार समझा है मन् यना माना है मन् यना भा

जिष्ठा करे उसी को पाने वस्तु करना है, जैसे पानी से भरा हुआ गी के शिर पर जलाना सम्यक् जेष्ठा करना हुआ तो उसी समय उस को पाने (पहने) करना है किन्तु पाने के योग्य से पहले हुए पद को पद नहीं मानना है, जैसे चाकर जाव सब कर्मों का अग्र कर के मुक्तिश्रेष्ठ में विराजमान तो नर को उस को सिद्ध करना है ।

१ लक्षणान्तर

लोहोहि मालोहि विराडि तेगमस्त द मिहनी ।
 मेसाणदि नयाण लकवणमिहमे सुण्ण बोद्ध । १॥
 ममदिअदिहेयाः ममवयस ममसर्वा विनि ।
 वज्ज विणिमिहयस, ववहमी मवववेत्तु । २॥
 वज्जवतगाना वज्जसुखी राव विहा सुण्णव्वी ।
 वज्जः विसेमिदमम पज्जममपण्णो सवो ३॥
 वज्जसो मममम, मीह वववपु मम सममिहवे ।
 वज्ज-अव-वज्जमम मवममो विसेमोह । ४॥

(अनुमोदक)

१ नैगम नय सामान्य विशेष तथा उभय प्रधान वस्तु को मानना है । २ सामान्य सामान्य प्रधान वस्तु को मानना है यथा सत् जगत् । ३ व्यवहारनय विशेष

१५३

महाराज के नाम भद्र है - इस कारण और
महाराज के नाम भद्र है - इस कारण और
महाराज के नाम भद्र है - इस कारण और

[illegible][illegible]

अपेक्षा कारण में उत्पादन कारण का आरोप करना जैसे मुनि के पात्रादि उपकरण को चारित्र (संघम) का आधार कहना, इसी का नाम कारणारोप है।

संकल्प नैगम के दो भेद होते हैं—स्वयंपरिणामरूप और कार्यरूप। स्वयंपरिणामरूप जो वीर्य चेतना का संकल्प होना इस जगत् जुदा = क्षय और उप-शम भाव लाना है दूसरा कार्यरूप—जैसा = कार्य हो वैसा = उपयोग हो, जैसे मिट्टी का करवा बना उस समय करवा का उपयोग और टकनी बनी उस समय टकनी का उपयोग।

(संग्रह नष्ट)

संग्रह नष्ट के दो भेद हैं—सामान्यसंग्रह और विशेषसंग्रह। सामान्यसंग्रह के भी दो भेद हैं—मूलसामान्यसंग्रह और उत्तरसामान्यसंग्रह। मूलसामान्यसंग्रह के अस्तित्व १ वस्तुत्व २ द्रव्यत्व ३ प्रमेयत्व ४ प्रदेशत्व ५ और अगुरुलघुत्व ६, ये छह भेद हैं और उत्तरसामान्यसंग्रह के दो भेद हैं—जातिसामान्य और समुदायसामान्य। जातिसामान्य जो एक जातिमात्र को ग्रहण करे। समुदायसामान्य—जो समुदाय अर्थात्

पहलार । पहले श्रेष्ठ वा अर्थ यह है कि- स्व याने अपनी आत्मा वा जा नरय याने ज्ञान दर्शन चारित्र्य वीर्य आदि अनन्तगुण गानन्दमय है, मेरा कोई नहीं और मैं हिमा वा नही हूँ, ऐसा जो अपने स्वरूपको जानना इस का नाम परवस्तुगननत्वज्ञाननव्यवहार है । इसका भेद परवस्तुगननत्वज्ञाननव्यवहार । इस दो । जो स्वभाव वा पद ही भेद है और किसी अपेक्षा से चार अथवा पांच भेद भी हो सकते हैं, इन सब को एक साथ दिखाने ह, जैसे धर्मास्तिकाय में चरन-सहाय आदि गुण (लक्षणा) हैं और अधर्मास्तिकाय में हिम सहाय आदि गुण हैं, आकाश में अभातनाद गुण ह, पृथ्वी में मिलन विखरन आदि गुण और काल में नया पुराना वर्तनादि गुण ह, इत्यादि । इन सब परवस्तुगननत्व को जानना इस का नाम परवस्तुगननत्वज्ञाननव्यवहार है ।

अन्य प्रकार से भा इस वस्तुगनन व्यवहार के तीन भेद होते हैं सा भा । यत्ने ह- १ द्रव्यव्यवहार २ गुणव्यवहार और ३ स्वभावव्यवहार । द्रव्यव्यवहार उस का कहते हैं कि जगत् में जा द्रव्य (पदार्थ) हैं उन को यथार्थ जानने, इस द्रव्य व्यवहार के कहने से बौद्धादि मन का निराकरण होता है । दूसरे गुणव्यवहार

पाठ करना, जैसे किसी को ज्ञान गुण लेकर ज्ञानी करना, दर्शन में दर्शन और ज्ञानि में ज्ञानि ब्रह्मादि

अशुद्ध व्यवहार के भा. रा. भेद - १. सश्लेषित अशुद्ध व्यवहार और असश्लेषित अशुद्ध व्यवहार । सश्लेषित अशुद्ध व्यवहार इस का करने में जो यह ज्ञान भोग के योग में रहने का भा. रा. करना । असश्लेषित अशुद्ध व्यवहार इस का करने में जो भ्रमादि योग है' ऐसा करना ।

इस अशुद्ध व्यवहार का अन्य प्रकार से भी भेद होमे है सो इस प्रकार - इस के मुख्य दो भेद है-विशेषणरूप अशुद्ध व्यवहार और प्रवृत्तिरूप अशुद्ध व्यवहार विशेषणरूप अशुद्ध व्यवहार में अनेक प्रकार का है । इसमें जो प्रवृत्तिरूप अशुद्ध व्यवहार है उस के तीन भेद है वस्तुप्रवृत्ति, साधन-प्रवृत्ति और लौकिकप्रवृत्ति इन में भी साधनप्रवृत्ति के तीन भेद है-लौकिकसाधनप्रवृत्ति, कुशावबन्धक साधनप्रवृत्ति और लोकव्यवहार साधनप्रवृत्ति लौकिक-साधनप्रवृत्ति-जो अरिष्टों की आशा से कुछ साधन भागों में इलोक सत्तार दुल भाग जाइसादि दोष रहित जो रूब्रयो की परिणति परभाव त्याग रहित

नहीं मानता है । स्थूलसूत्रवाला साध प्रवृत्ति
अथवा कथनों के कथनेवाले को जैसा देखता है वैसा
ही मानता है ।

(शब्द नय)

शब्द नय के चार भेद हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य
और भाव । इन चार भेदों को ही जैनशास्त्र में निश्चेष
कहते हैं ।

(समञ्जित नय)

समञ्जित नय का यह एक ही भेद है ।

(एवभूत नय)

एवभूत नय का भी पूर्वोक्त केवल एक ही भेद है ।
अब अन्य प्रकार से भी नयों के भेद कहते हैं—

इसके अन्यटिकाने सात भेद भी बताए हैं, देखा नयचक्र
देवचन्द्रजा पुत । १ इन निश्चेषों का विशेष विग्रह देखा भागम-
सर नयचक्र द्रष्टुमव तावत् । यदि । २ इस के अन्य टिकाने
जो भेद भी कहे हैं देखा नयचक्र देवचन्द्रजा पुत ।

सब जीव चैतन्यभाव द्वारा विरोधरहित है ऐसा कहना ।

(व्यवहार नय)

व्यवहारनय दो प्रकार का है—सामान्यसंग्रहभेदक व्यवहार और विशेषसंग्रहभेदकव्यवहार । सामान्यसंग्रहभेदकव्यवहार—जैसे जो द्रव्य है सो जीव अजीव स्वरूपी है ऐसा कहना । विशेष संग्रहभेदकव्यवहार—जैसे जोव है सो संसारी भी है मुक्त भी है, ऐसा कहना ।

(कृतसूत्र नय)

ऋजुसूत्र नय के भी दो भेद हैं—सूक्ष्मऋजुसूत्र और स्थूल ऋजुसूत्र । सूक्ष्म ऋजुसूत्र—जो सूक्ष्मपणे वस्तु को संग्रह करे तथा जो एक समयावस्थायी पर्याय माने । स्थूलऋजुसूत्र—जो स्थूलपणे वस्तु को संग्रह करे, तथा मनुष्यादि पर्याय को अपने २ आयुः प्रमाण काल तक उहरना माने ।

(शब्द नय)

शब्द नय एक प्रकार का है—जो शब्द के द्वारा हो वस्तु

तो जाने जैसे-दारा, भारी कलत्रं । ये शब्द अनेक
परन्तु अर्थ एक ही है ।

(समभिम्ब नम)

समभिम्ब नम का भी एक मत है जो जहाँ जैसा
स्थापना कर के पशु का उर करे जैसे गो पशु ह ।

(समभिम्ब नम)

समभिम्ब नम का भी एक मत है जो जहाँ माँक
या कः दः उरकर नाम ले जैसे 'उरवीति उरः' जो
'उर' या 'माँक' का उर का नाम उर ह ।

६. 'मृग-मृग'.

नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली लेने को जाता हूँ, अब कुछ देरने हुए उस को देख कर किसी पुरुष ने पूछा 'भाई' तू क्या कहता है', तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि भाई! मैं पायली कहता हूँ। अब वह कुछ काट कर घर लाया और पहने लगा तब किसी ने पूछा कि भाई! तू क्या कहता है तब वह विशुद्ध नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायला कहता हूँ। उस लड़के को बीजणा से कोरने हुए का देख कर किसी ने पूछा कि भाई! तू क्या कोरता है', तब वह विशुद्धतर नैगमनय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायला कहता हूँ। उस को लेखिनी से समाने हुए को देखकर किसी ने पूछा कि भाई! तू क्या समारता है', तब वह अत्यन्त विशुद्धतर नैगमनय के अभिप्राय से बोला कि मैं पायली को समारता हूँ। अब वह पायली संपूर्ण तैयार हो गई और उस को पायला कहना, यहाँ तक विशुद्धतर नैगमनय का अभिप्राय है। व्यवहार नय का भी इसी तरह मानना है। तब सगरनय वाला बोला कि भाई 'जब इस से धान्य भरोगे तब यह पायली कहो जायगी अन्यथा यह काट है। कलुषनय वाला

कहना है कि जब पाठकों में भाव्य मर कर एक ही
 चीज का पान्थ बनाना चाहते हैं तो वे भाव्य मापोंमें
 पाठकों को लायनी अवस्था में लाए हों और वे
 भाव्य हों । तब जबकि वे चीज में लायनी पाते हैं कि वे
 पाठकों में भाव्य मर के जब उपयोग में लायनी एक ही
 चीज का पान्थ बनाना चाहते हैं तो वे भाव्य मापोंमें
 पाठकों को लायनी अवस्था में लाए हों और वे भाव्य हों और
 वे लायनी हों ।

तु इन सब कीय समझो ले रहता है । तब वह विशुद्धतर
 नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं मध्य जम्बुद्वीप
 में रहता हूँ । तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई !
 मध्य जम्बुद्वीप में तो उल्लेख हैं तो क्या तु इन देशों
 की भेटों में रहता है । तब वह पुरुष अन्यन्त विशुद्ध
 नैगम नय के अभिप्राय से बोला कि मैं भरतक्षेत्र में
 रहता हूँ । तब वह निपुण पुरुष बोला कि भाई ! भर-
 तक्षेत्र तो जो = दक्षिणादि भरत क्षेत्र और उन्नादि
 भारत, तो क्या तु दोनों की क्षेत्रों में रहता है ? तब
 वह पुरुष अन्यन्त विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय
 से बोला कि मैं दक्षिणादि भरत क्षेत्र में रहता हूँ ।
 तब वह निपुण पुरुष बोला कि दक्षिणादि भरत क्षेत्र
 में तो ग्राम, अग्रार, नगर, गेह, कक्यह महन्त द्रोण-
 मुख, पट्टण, आश्रम, मन्वार, मन्निवेश आदि बहुतसे
 हैं तो क्या तु इन सभी में रहता है ? तब वह पुरुष फिर
 कुछ अधिक विशुद्धतर नैगम नय के अभिप्राय से
 बोला कि मैं पाटलीवृत्र नगर में रहता हूँ । तब वह
 निपुण पुरुष बोला कि पाटलीवृत्र नगर में तो बहुत

यदि इ नमः = सर्व = हेमन्त है सर्व = हरित
 'मन्त्र' = देवकृत मन्त्र = सर्वोपदेष्टा सर्वोपदेष्टा क्षेत्र ।

रहता है। तब वह गण्डादि तीन नया के अभिप्राय से बोला कि मैं अपने व्यासस्वरूप से रहता हूँ।

तैगम नय वाला चार नयों का प्रदेश कहता है जैसे धर्माभिनिकाय का प्रदेश, अधर्माभिनिकाय का प्रदेश, आकाशाभिनिकाय का प्रदेश, जल का प्रदेश, पृथ्वी-भूतल का प्रदेश, वेग का प्रदेश। तैगम नय वाले के ऐसे कहने पर तैगम नय वाला बोला कि जो न वह द्रव्यों का प्रदेश कहता न वा चार नयों का प्रदेश नहीं होता है क्यों कि देश का जो प्रदेश है वह उसी द्रव्य स्वरूप का है किन्तु द्रव्य प्रदेश अलग नहीं है, इस पर ह्युपनिषद् कहते हैं जैसे किसी साहकार के दात ने खर (गर्जन) साहकार नय वह साहकार कहता है कि दात भी मेरा और खर का मेरा है परन्तु खर दात का नहीं कहलाता = इस ह्युपनिषद् से चार द्रव्यों का प्रदेश मन क्यों परन्तु दात दात का प्रदेश कहो-

२ स्यात् अधर्मास्तिकाय का प्रदेश, ३ स्यात् आकाशास्तिकाय का प्रदेश, ४ स्यात् जीव का प्रदेश, ५ स्यात् पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश । कजुसूत्र नय वाले के ऐसे बोलने पर शब्द नय वाला कहता है कि जो तू 'भक्ष्यव्यो' भजनीय प्रदेश कहता है सो नहीं होता है क्यों कि भजनीय प्रदेश कहने से एसी शङ्का प्राप्त होती है कि जो धर्मास्तिकाय का प्रदेश है वही स्यात् अधर्मास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् आकाशास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् जीव का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी प्रदेश होता होगा । इस रीति से जो अधर्मास्तिकाय का प्रदेश है वही स्यात् धर्मास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् आकाशास्तिकाय का भी प्रदेश होता होगा, स्यात् जीव का भी प्रदेश होता होगा स्यात् पुद्गलस्कन्ध का भी प्रदेश होता होगा । इसी तरह आकाशास्तिकाय का प्रदेश, जीव का प्रदेश और पुद्गलस्कन्ध का प्रदेश को भी समझ लेना चाहिये । ऐसे (भजनीय प्रदेश) कहने से तो अनवस्था दोष का प्राप्ति होगी इसलिए भजनीय प्रदेश मत करो किन्तु ऐसा करो कि जो धर्मरूप द्रव्य का प्रदेश है वही धर्मप्रदेश है जो अधर्मरूप द्रव्य का प्रदेश है वही अधर्म प्रदेश है, जो

प्रदेश है वही प्रदेश जाज्ञाश द्रव्य है । जीव का जो प्रदेश है वह प्रदेश जीवद्रव्य नहीं है और पुद्गलस्कन्ध का जो प्रदेश है वह प्रदेश पुद्गलस्कन्ध नहीं है । समभि-
रुद नय वाले के एते बोलने पर एवम्भूत नय वाला कहता है कि जो जो धर्मात्मिकायादिक वस्तु नू कहता है वह वह 'सर्वे' नय 'कुम्भ' देशप्रदेशकल्पनारहित, 'प्रतिष्ठा' स्व स्वस्व में अभिन्न, 'निरवशेष' अवयव-
रहित, 'एकग्रहणगुण' जो एकही नाम से बोलाजावे ननु अनेक नामों से, कारण कि नाम के भेद से वस्तु में भेद की व्यापति होजाती है इस लिए धर्मात्मा-
कायादि वस्तु को सारे जगत् को किन्तु देशप्रदेशादिरूप से मन जगत् को कि देश भी मेरे मन में वस्तु नहीं है और प्रदेश भी मेरे मन में वस्तु नहीं है, सिर्फ अखण्ड वस्तु का ही तन्त्र में उपयोग होता है ॥

७ नयावतार द्वार

प्रथम जीव के विषय में सात नय कहते हैं—नैग-
मनय के मन से एत पर्याय और शरीर सहित सभी जीव है, इत नय ने ऐसे कहते हुए पुद्गलद्रव्य धर्मा-
त्मिकाय आदि को भी जीव में गिनलिया । संग्रह नय कहता है कि अस्तव्याप्त प्रदेश वाला जीव है, इस

व्यय धर्म के विषय में सानो नयो को उतारते हैं—

नैगमनय के मत में सद्य धर्म है क्यो कि सद्य कोई धर्म की इच्छा रखता है, इस नयने अंशरूप धर्म को भी धर्म नाम कहा है । संग्रह नय के मत से जो वशापरम्परा का धर्म है वही धर्म है, इस नय ने अनाचार को झाड़कर कुलाचार को ग्रहण किया है । व्यवहारनय के मत से जो सुख का कारण है वही धर्म है, इस नय ने पुण्य की कर्त्ता को ही धर्म कहा । ऋजुस्त्र नय के मत से उपयोगसहित वैराग्यपरिणाम को धर्म कहते हैं, इस से यथाप्रवृत्तिकरणा का परिणाम भी धर्म हो जाता है जो परिणाम मिथ्यात्वी लोगो को भी होता है । शब्दनय के मत से समकित की प्राप्ति को ही धर्म कहते हैं क्यो कि धर्म का मूल समकित है । समभिरुद नय के मत से जीव अजीवादि नव तन्वो को या ब्रह्म द्रव्यो की जानकर अजीव का त्याग करनेवाला और जीव-सत्ता को ध्यानेवाला जो ज्ञान दर्शन चारित्र्य का परिणाम वही धर्म है, इस नय ने साधक और सिद्ध इन दोनों परिणामों को धर्म में अङ्गीकार किया । एवभूत नय के मत से शुक्लध्यान रूपान्तर परिणाम और क्षपकश्रेणि, ये जो कर्मअय के हेतु हैं वेही धर्म है क्यो कि जीव

का मुख्य भाग ही धर्म है, हम धर्म से ही मोक्ष प्राप्त करने की सिद्धि होती है।

अब मन्द के विषय में सातों नवों को उतारते हैं

प्रेमम नम से मत से मत जीव मन्द है क्यों कि
 हृत्-ज्ञान का भंडार तो पापः अतः जीवों में रहता है।
 तथा यथा में एसा भी कहा है - आठ रुत रुतों का
 मय जाय के मन्द के पश्चात् समान अत्यन्त निर्मल
 का रहता है। इससे कभी कहा कि नहीं लग सकते। मंद
 तथा क मय म मय जाय की मत्ता मन्द के समान है,
 इससे एसा प्रमाण कि नम की अपेक्षा बहुत कम है।
 कि नम का अपेक्षा का समानता किया है। अपेक्षा
 मय के मय म मय का प्रमाणता कर के मायमिद कर
 मय के मय म मय म मय म मय का मुख्य माना
 * * * * * मय म मय म मय म मय म मय की ओर

शुद्ध उपयोग की एकाग्रता से धर्म शुद्ध ध्यान द्वारा समकितादि (सम्यक्त्वादि) गुण को प्रकट करता हुआ मोहनाशक १२ वे गुणठाणी क्षीणमोही होकर आत्म-सिद्धिगो को प्राप्त करे वह सिद्ध है। इस नय ने क्षपक श्रेणि वाले को सिद्ध माना है। समभिरुद्ध नय के मत में जो केवलज्ञान केवल दर्शन आदि गुणों से विभूषित है वही सिद्ध है, इस नय ने १३ वे १४ वे गुणठाणी में वर्तमान केवली भगवान् को भी सिद्ध माना है। एवंभूत नय के मत से वही सिद्ध कहा जा सकता है जो अष्ट कर्मों का क्षप कर के लोक के अयभाग में विराजमान और आठो गुणों से युक्त है।

अथ सामायिक पर सात नय उतारते हैं—

नैगम नय के मत से जब सामायिक करने का परिणाम हुआ तब ही सामायिक माना जाता है। संग्रह नय के मत में सामायिक के उत्तरकरण लेकर विनयपूर्वक गुरु के समीप जाकर विधिपूर्वक आसन बिछाना है उस वखत सामायिक कहा जाता है। व्यवहार नय के मत से "करेमि भते" का पाठ उच्चारण कर सावध योग का त्याग पूर्वक पञ्चवखाण (प्रत्याख्यान) करे उस वखत सामायिक माना जाता

ने । जनसमूह नर के मन में मन जनन और हाथ के
 योग यह इस बात में प्रतीते लगे नर की सामाजिक
 कला । १०० । १०० नर के मन में जीव धार भजाव
 न । समस्त नर नर जनसमूह । १००-मन । १०० धार और
 नर नर में समस्त बात । १०० नर उम नर नर सामा
 नित नर नर । १०० नर के अभिप्राय में अधिक
 नर नर । १०० सामाजिक भाषा । १०० समस्त
 नर नर । १०० नर नर । १०० नर नर । १०० नर नर

पाण का तो कोई कत्तर नहीं है याण तो किसी पुरुष के हाथ से हुआ है इस बातसे पाण के चलाने वाले का कत्तर है। तब व्यवहार नय वाला बोला कि भाई ! याण मारने वाले का कोई कत्तर नहीं है परन्तु तुम्हारे अशुभ गत का जार है अर्थात् अशुभ ग्रह का कत्तर है। तब कजुम्ब्र नय वाला बोला कि भाई ! ग्रह का कोई कत्तर नहीं है क्योंकि ग्रह तो सब ही समानदृष्टि वाले हैं किन्ता को भी दुःख देने नहीं है परन्तु तुम्हारे कर्मों का कत्तर है। तब शब्दनय वाला बोला कि भाई ! कर्मों का कोई कत्तर नहीं है क्योंकि कर्म तो जह (अनेकन) हैं, कर्मों के करने वाले तो अपने जीव हैं, जिस परिणाम से कर्म करते हैं वैसे ही फल भोगते हैं इसलिए तुम्हारे जीव का ही कत्तर है। तब समभिरुद नय वाला बोला कि भाई ! जीव का तो कोई कत्तर नहीं है जैसा देवली भगवान् ने भाव देखा तो वैसा ही जीव का परिणाम होता है, तदनुसार कर्म करता है, आर देता ही फल भोगता है, उस को कोई टालने समय नहीं है इसलिए समभाव का अवलम्बन करना चाहिये। तब एवभूत नय वाला बोला कि ये सुन्दर जगति सब बात व्यवहार रूप प्रवृत्ति है, कर्मों का कर्ता तथा भाक्ता कर्म ही है परन्तु

[illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

[illegible]

४ अशुद्धअतिपर्याय-जैसे जीव-द्रव्य के जन्म और मरण । ५ उपाधिपर्याय-जैसे जीव के साथ कर्मों का सम्बन्ध । ६ शुद्धपर्याय-जैसे मूलपर्याय सब द्रव्यों का एकसमान है ।

अब दूसरी तरह से भी द्रव्याधिक के १० भेद और पर्यायार्थिक के ६ भेद कहते हैं जिस में द्रव्याधिक के १० भेद इस प्रकार-१ कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्ध द्रव्याधिक-जो कर्मोपाधि स्वरूप से अलग शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना जैसे ससारी जाव को सिद्धसमान कहना । २ उत्पादव्ययप्राधान्येन सत्ताग्राहक शुद्ध द्रव्याधिक-जो उत्पादव्यय की भावना कर सत्ता स्वरूप से वस्तु को ग्रहण करना जैसे अशुद्ध निष्पत्ति ऐसा कहना । ३ भेद कल्पनानिरपेक्ष (स्मिन्नस्वगुणपर्याय से अभिन्नशुद्ध द्रव्य का ग्राहक) शुद्ध द्रव्याधिक-जो भेद कल्पना से अभिन्न शुद्ध वस्तु कल्पना जैसे निजगुणपर्याय से द्रव्य अभिन्न है ऐसा कहना । ४ कर्मोपाधिमापेक्ष अशुद्ध द्रव्याधिक जो कर्मोपाधि संयुक्त वस्तु का अनुभव करना, जैसे आत्मा को कार्य मानी आदि कहना । ५ उत्पादव्ययप्राधान्येन सत्ताग्राहक-अशुद्ध द्रव्याधिक-

उत्पाद तथा से संयुक्त वस्तु का अनुभव करना जैसे
 वस्तु एक समय में उत्पाद तथा और ध्रुव से
 संयुक्त है, ऐसा कहना । १ भेदकल्पनासाधित अशुद्ध
 तर्काधिक-जा भेदकल्पना करके संयुक्त अशुद्ध
 वस्तु का अनुभव करना, जैसे 'ज्ञान दर्शन' आदि
 का गुण है' ऐसा कहना । २ अन्वय द्व्यर्थिक-
 का गुण प्रतीति प्रमाण करके वस्तु का अनुभव करना,
 जैसे गुण प्रतीति प्रमाणान्वय कह्य है ऐसा कहना ।
 ३ साध्याधिक-तक द्व्यर्थिक-जा साध्याधिक-का ही महत्त्व
 का जैसे साध्याधिक-तक का प्रमाण से ही कह्य है
 ऐसा कहना । ४ साध्याधिक-तक द्व्यर्थिक-जा
 प्रमाण से ही वस्तु का महत्त्व का जैसे साध्याधिक-
 तक का प्रमाण से ही कह्य है ऐसा कहना ।
 ५ साध्याधिक-तक द्व्यर्थिक-जा प्रमाण से ही
 वस्तु का प्रमाण से ही कह्य है ऐसा कहना ।

यदि भी यह प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण
 प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण प्रमाण

करके संयुक्त है परन्तु नित्य है और पर्याय पने अनुभव करना, जैसे सिद्धो का पर्याय नित्य है । ३ अनित्य-शुद्ध पर्यायाधिक- जो सत्ता को गौण करके उत्पाद व्यय स्वभाव से अनुभव करना जैसे समय समय प्रति पर्याय विनाशवान् है । ४ सत्ता सापेक्ष स्वभाव नित्याशुद्ध पर्यायाधिक- जो सत्ता स्वभाव न्युक्त नित्य अशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना जैसे एक समय में पर्याय नानं स्वभावान्मक है । ५ कमोगाधिनिरपेक्षस्वभाव नित्यशुद्ध पर्यायाधिक- जो कर्म के उपाधि स्वभाव से भिन्न नित्य शुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे संसारी जीव के पर्याय सिद्धपर्याय के समान शुद्ध है । ६ कमोगाधि सापेक्षस्वभाव अनित्याशुद्ध पर्यायाधिक- जो कमोगाधि स्वभाव से संयुक्त अनित्याशुद्ध पर्याय पने अनुभव करना, जैसे नसारी जीवों की उत्पत्ति और विनाश है ।

९. सप्तभङ्गीहार.

भङ्गों के नाम— १ स्यात् अस्ति, २ स्यात् नास्ति, ३ स्यात् अस्ति नास्ति, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात्

१ इत्येवमस्य विनाश उत्पत्तिरस्योत्पत्तिश्च स्वस्वेन भुङ्क्ते ।

[illegible]

करते समय परद्रव्यादि को अपेक्षा से वस्तु में विद्यमान रहा हुआ नास्ति धर्म नहीं धोला जाता इस लिए वह अवक्तव्य है । २ उर्भा अवक्तव्यता के साथ वस्तु में अस्तिधर्म भा है इस से यह 'स्यात् अग्नि अवक्तव्य' नाम का पानवो भङ्ग होता है। वै इसी तरह नास्तिधर्म भा अवक्तव्यता के साथ वस्तु में है इस से यह 'स्यात् नास्ति अवक्तव्य' नाम का छठा भङ्ग होता है । ३ वही अस्तिपन और नास्तिपन दोनों धर्म युगपत् एकसाथ वस्तु में कहा नहीं जासकता इस लिये अवक्तव्य और कम से अस्तिनास्ति है इस से यह 'स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य' नाम का सातवां भङ्ग होता है ।

नित्य न्याय पक्ष में इस प्रकार सप्तभङ्गी होती है—१ स्यात् नित्य, २ स्यात् अनित्य, ३ स्यात् नित्या-नित्य, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात् नित्य अवक्तव्य, ६ स्यात् अनित्य अवक्तव्य, ७ स्यात् नित्यानित्य युगपत् अवक्तव्य

अदण्ड अनेक गुण पर्याय पक्ष में भी सप्तभङ्गी दिखाने के १ स्यात् एक, २ स्यात् अनेक, ३ स्यात् एक-अनेक, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात् एक अवक्तव्य, ६ स्यात्

२. निक्षेप द्वार.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो ॥१॥

(11-11-11)

[illegible]

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ३ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ५ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ६ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ७ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ८ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ९ ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १० ॥

[illegible]

प्रतिमा का रूप, स० अट्टन से वस्त्रादिकों के टुकड़ों को माप कर बनाया हुआ रूप जैसे कञ्चुकी, अक्ख-
 १० चन्दन के पानों का रूप, व० कोहियों का रूप ।
 इन काष्ठकर्म आदि दशा के विषय में आवश्यक क्रिया
 युक्त साधु का एक अथवा अनेक, सद्भाव- काष्ठक-
 मर्यादिका के विषय गगन्ये आकार अथवा असद्भाव-
 चन्दन कोड़ादिका के विषय आकार रहित स्थापना
 करें वह स्थापनावश्यक है । इन नाम और स्थापना
 में उक्त विंशति ७० उन्तर- नाम तो यावन्कथिक
 अपने आश्रय द्रव्य की स्थितिव कथा पर्यन्त रहने
 वाला होता है और स्थापना इन्वरा (गोड़े काल तक
 रहने वाला) और यावन्कथिका (अपने आश्रय द्रव्य
 को स्थापयन्त रहने वाला) दोनों तरह की होती है ।

३ द्रव्यावश्यक के दो भेद होते हैं—आगमनों
 द्रव्यावश्यक और नोआगमनों द्रव्यावश्यक । आगमनों
 द्रव्यावश्यक— उत्तरा न्यावन्मए नि पद निखित
 १, टित २, जित ३, मित ४, परिजित ५, नामसम ६,
 धोसम ७, अक्षकखर ८, अण्वकखर ९, अवा-
 इकखर १०, अकवलिअ ११, अमिलिअ १२, अवचा-
 नेलिअ १३, पटिपुण १४, पटिपुणगोस १५, कटोद-
 विपेसुक् १६, गुरुवायणोवाय १७, सेण नन्ध वायणाए



था और वह काल प्राप्त होगया, उस के मृतक शरीर को भूमि पर अधवा स्थान पर लेटा हुआ देख कर किसी ने कहा कि यह इस शरीर द्वारा जिनोपदिष्ट भाव से आवश्यक इस सूत्र का अधिसामान्य प्रकार से प्ररूपता था, विशेष प्रकार से प्ररूपता था, समस्त प्रकार भेदाभेद द्वारा प्ररूपता था तथा क्रिया विधि द्वारा सम्यक् प्रकार दिखलाना था जैसे शब्द के घड़े को तथा घा के घड़े को देख कर कोई कहे कि यह शब्द का घड़ा तथा घा का घड़ा था ।

२ भव्यशरीर नाआगम से द्रव्यावश्यक- जैसे किसी आवश्यक के घर पर लड़के का जन्म हुआ उस वक्त उस का देख कर कोई कहे कि इस लड़के की आत्मा इस शरीर से जिनोपदिष्ट भाव द्वारा आवश्यक इस सूत्र के अधि का जानकार भविष्यत काल में (आयदा) होगा, उसे नये घड़े का देख कर कोई कहे कि यह शब्द का घड़ा तथा घा का घड़ा होगा ।

३ जानकशरीर-भव्यशरीर-तद्व्यतिरिक्त ना आगम से द्रव्यावश्यक के तीन भेद होते हैं - १ लौकिक, रेकुप्रावचनिक और ऐलोकोत्तर । लौकिक-जानक शरीर- भव्यशरीर- तद्व्यतिरिक्त- नाआगम से द्रव्यावश्यक वह है जो कोई राजेश्वर तलवर माध्विक कौटुम्बिक

[illegible]

भावावश्यक के दो भेद हैं - १ आगम से भावावश्यक और २ नाआगम से भावावश्यक ।

आगम से भावावश्यक - जिसने आवश्यक इस सूत्र के अर्थ का ज्ञान किया है और उपयोग कर के सहित है उस को आगम से भावावश्यक कहते हैं । नाआगम से भावावश्यक के तीन भेद होते हैं - १ लाकिक नाआगम से भावावश्यक २ कृपावचनिक नाआगम से भावावश्यक और ३ लाकात्तर नाआगम से भावावश्यक ।

लाकिक नाआगम से भावावश्यक - जो लोग पूर्वाह्न - प्रभात समय - उपयोग सहित भारत और अपराह्न दुपहर बाद उपयोग सहित रामायण को वांचे तथा श्रवण कर उसका लाकिक नाआगम से भावावश्यक कहते हैं ।

कृपावचनिक नाआगम से भावावश्यक - जो ये पूर्वोक्त चरक, चारिक, यादव पाण्डे मार्ग में चलने वाले यथावसर " इज्जजलिहामजपान्दुस्वनमोकारमाह - आह भावावस्मयाह संति मे न कृपावयणिअ भावावस्मयं " इ० यज्ञ दिपय जलाजलि का देना अथवा संभ्राश्चनसमय जलाजलि का देना , अथवा देवी के सन्मुख हाथ जाड़ना , हां ० अग्निहवन का

आवश्यक में प्रारम्भ काल से लेकर प्रतिक्षण चढते २ प्रयत्नविशेष अध्यवसाय के रखने वाले, तदष्टो० उसी आवश्यक के अर्थ के विषे उपयोग सहित अर्थात् तावतर वैराग्य के रखने वाले, तदपि० उसी आवश्यक में सब इन्द्रिया (इन्द्रियों के व्यापार) को लगाने वाले, तन्मा० उसी आवश्यक के विषे अव्यवच्छिन्न उपयोग सहित अनुष्ठान से उत्कृष्ट भाव द्वारा परिणत पसे आवश्यक के परिणाम रखने वाले, अण्णत्थ० उसी आवश्यक के सिवाय अन्यत्र किसी भी स्थान पर मन वचन आर काया के योगा का न करते हुए चित्त का एकत्र रखने वाले, ज्ञाना वरुत्त उपयोग सहित आवश्यक को उसका लाभान्तर नाआगम से भावावश्यक कहते हैं । इति लाभान्तर नाआगम से भावावश्यक ।

अथ आवश्यक के प्रकारों का नाम कहते हैं—

१ आवससय २ अवससरणिज्ज ३ धुवनिग्गहो ४

विमोर्हाय ।

५ अउल्लयण त्थवग्गो, ६ नाओ ७ आराहणा
८ मग्गा ॥ १ ॥

समणंण मावण्णय, अवसस कायव्वय हवइ जम्हा ।

यतो अहो निसस्सय, तम्हा आवससय नाम ॥ २ ॥

का कारण होने से उस को आराधना कहते हैं ७ ।
मन्त्रो० मोक्ष मय नगर में पहुँचाने वाला होने से उस
को मार्ग कहते हैं ८ । साधु और साध्वी भावक और
भाविकाओं से रात और दिन की संधि में यह
अवश्य किया जाता है, इसलिये इस को आशुष्यक
कहते हैं ।

३ द्रव्यगुण-पर्याय-द्वार

द्रव्य— गुणपर्यायवद्द्रव्यम् इति (तन्वार्थसूत्र
४) — वचनान्तात् गुणा के समूह और
पर्याय से युक्त है उसका द्रव्य कहते हैं ।

गुण— 'सहभाविना गुणा इति वचनान्तात्, द्रव्य
के पूरे हिस्से में और उस का सघ्न हालता में रहे
उसको गुण कहते हैं ।

पर्याय— गुणविकारा पर्याया इति वचनान्तात्
गुणों के विकार को पर्याय कहते हैं, अथवा "कमवर्तिनः
पर्याया इति वचनान्तात् जो कमसे बदलती रहे उस
को पर्याय कहते हैं ।

द्रव्य के दो भेद हैं— 'जाव द्रव्य और २ अजाव
द्रव्य । गुण के अनेक भेद हैं, परन्तु मुख्यतया जीव

तत्त्व , ३ सक्रियत्व और चौथा मिलन विखरन रूप परमगुण गुण है । (१) कालद्रव्य के भी चार गुण हैं
१ स्वरूपित्व , २ अनेननत्व , ३ अक्रियत्व और चौथा
नया पराना वर्तनालक्षण गुण है ।

इन से प्रत्येक का पचास चार चार होती है —
१ धर्मास्तिकाय का चार पर्याय— १ स्कन्ध, २ देश, ३ प्रदेश
और ४ स्वगन्ध । २ अधर्मास्तिकाय और ३ आकाशा-
स्तिकाय का भी वे ही चार चार पर्याय होती है ।
४ जाव द्रव्य का चार पर्याय— १ अव्याघात, २ अवगाह,
३ ह्यमन चार अगुरुलघु । ५ पुद्गल द्रव्य की चार
पर्याय— १ वरुणा , २ रस चार ३ स्पर्श अगुरुलघु
सहित । ४ काल द्रव्य का चार पर्याय— १ अतीत,
२ अनागत ३ वर्तमान चार ४ अगुरुलघु ।

विरल अल्प प्रकार से द्रव्य गुण पर्याय के भेद कहते
हैं— द्रव्य गुण पचास चार प्रकार का है । गुण द्वा प्रकार
का है सामान्य और विशेष ।

अमर्त्त है, उस के भाव को अमर्त्तत्व कहते हैं ।

धर्मास्तिकायादि ब्रह्म द्रव्यों में से एक एक द्रव्य में पूर्वात्त इन दश सामान्य गुणों से के आठ आठ गुण पाये जाते हैं, जैसे - १ जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७ ज्ञेयत्व, ८ अमर्त्तत्व) पाये जाते हैं । २ पुद्गल द्रव्य में ज्ञेयत्व और अमर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७ अज्ञेयत्व, ८ अमर्त्तत्व) पाये जाते हैं । ३-४ धर्म अधर्म आकाश और काल इन चार द्रव्यों में ज्ञेयत्व और मर्त्तत्व ये दो गुण नहीं हैं, शेष आठ गुण (१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रव्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ अगुरुलघु, ६ प्रदेशत्व, ७ अज्ञेयत्व, ८ अमर्त्तत्व) पाये जाते हैं । इस प्रकार दश गुणों में से दो दो गुण वर्ज कर शेष आठ आठ गुण प्रत्येक द्रव्य में पाये जाते हैं ।

विशेष गुण सोलह प्रकार का होता है - १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ स्पर्श, ४ स्वीय, ५ स्पर्श, ६ रस, ७ गन्ध, ८ वर्ण, ९ गतिहेतुत्व, १० स्थितिहेतुत्व, ११ अवगाहनहेतुत्व, १२ वर्तनाहेतुत्व, १३ ज्ञेयत्व, १४ अज्ञेयत्व, १५ सु-

पृथिवी अथोलोक, अतम प्रभा पृथिवी अधोलोक, और
अतमरतन प्रभा पृथिवी अधोलोक । त्रियोगलोक के जम्बू
द्वीप और तवगस्तसुद्र में यावत् स्वयम्भूरमण द्वीप
और स्वयम्भूरमण सुद्र तक जितने जलस्थान द्वीप
समुद्र हैं, उतने ही त्रियोगलोक के भेद हैं । ऊर्ध्वलोक के
पन्द्रह भेद -- 'सुधमे देवलोक' से लेकर यावत् १२ वें
अस्त्युन देवलोक '१३ वें नवमैवेन्द्रक, १४ वें पांच
जलुनर विमान और '१५ वें ईशानाभान। पृथिवी, ये
पन्द्रह भेद हुए ।

३ =

जिस के नागवन्धुजा का तन्मन्त्रा पुनानन पर्याय
उपन होता है उसी का नाम वायु है, इस के अनेक
भेद हैं १ समय २ अवलिका, ३ वस्तुवास्तवि-
वास्त, ४ प्राण एक अर्ध सोन-वास ५ श्लोक (मान-
प्राण), ६ लव (मान श्लोक) ७ सुधमे (५५ लव,
अथवा २३० श्लोक, अथवा ३५५३ स्व सोन-वास
अथवा १३५५५२०३ एक करोड़ सहस्र लाख सत्तह
तर हजार दो सौ सोन-अवलिका, अथवा दो घड़ी,
अथवा ४८ मिनिट) , ८ ज्योगात्र ३१ सुधमे अथवा
२४ घण्टे), ९ वस्तु, पन्द्रह ज्योगात्र, १० मास (दो

३ कारण-कार्य द्वार.

॥

जिन के द्वारा कार्य मजदीक हो उसे कारण कहते हैं। अर्थात् कार्य के सफल हो जाने के कारण कहते हैं।

॥

जो कुछ कारण प्रभाव दिया उस के सम्बन्ध होने से वह कार्य सम्पन्न हो।

इन कारण कार्य पर दृष्टान्त कहते हैं, जैसे किसी वृक्ष को रखाकर बीज लगाना है और पानी में मछली आगारा उस को पौने के लिए लगाए से बैठना वह भी कारण है और रखाकर बीज पटुवना वह कार्य है।

४ निश्चय-व्यवहार द्वार.

(विशेष)

वस्तु का निश्चय सम्मान - जो चीजों का सत्य अवस्था में रहे - उस को निश्चय कहते हैं।

(उदाहरण)

वस्तु की जो सत्य प्रकृति या सत्य अवस्था का बदलना

८ उपादान-निमित्त कारण द्वार.

जो पदार्थ स्वयं स्वरूप परिणामे उस को उपादान कारण कहते हैं, जैसे घट का उत्पत्ति में मिट्टी। तथा अनादि काल से समय से जा पर्यायों का प्रवाह चला आरहा है उस में जा अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती पर्याय है वह उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती जो पर्याय है वह फल है।

जो पदार्थ स्वयं स्वरूप परिणामे किन्तु कार्य की उत्पत्ति से उत्पन्न होता है उस को निमित्त कारण कहते हैं, जैसे घट का उत्पत्ति में कुम्भकार दण्ड चक्र आदि।

उपादान कारण शिष्य का और निमित्त कारण गुरु महाराज का जिसे से ज्ञान का प्राप्ति होती है। इस पर चर्चा कहते हैं -

१ निमित्त प्रधान और उपादान भा अशुद्ध - जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य भा अज्ञानी। २ निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध - जैसे गुरु अज्ञानी और शिष्य

7

1

2

3

4

5

6

7

8

9

10

पहा हुआ देख अनुमान करे कि यह सोनैया वही है जिसे मेने पहले देखा था ।

इसी विशेष दृष्ट के सन्नेप से तीन भेद कहते हैं—
अतीत काल ग्रहण, वर्तमान काल ग्रहण और
अनागत काल ग्रहण ।

अतीत काल विषय जो ग्राह्य वस्तु का परिच्छेद (ज्ञान) उसको अतीतकाल ग्रहण कहते हैं, जैसे ग्रामान्तर जाते हुए किसी पुरुष ने रामने में नृत्य सहित भूमि धान्य के बहुत समूह (डेर) निपजे हुए, कुण्ड सरोवर नदी धावही नालाब आदि भरे हुए, और बाग बगीचे हरे भरे देखकर अनुमान किया कि इस स्थान पर अतीत काल में सुवृष्टि हुई है ।

जो वर्तमानकालविषयक ग्रहण हो उसको वर्तमान काल ग्रहण कहते हैं जैसे गोचरी जाते हुए किसी हुनिराज ने अन्यन्त भाव भक्ति से प्रचुर भात पानी देने हुए बहुत शतारों को देखकर अनुमान किया कि यहा अभी वर्तमान काल में सुभिक्ष है ।

जो अनागत (भविष्यत्) काल विषयक ग्रहण हो उसको अनागत काल ग्रहण कहते हैं । जैसे आकाश का निर्मल पना, पर्वतों की श्यामता बिजली सहित

पहा हुआ देख अनुमान करें कि यह सोनैया वही है जिसे मेने पहले देखा था ।

इसी विशेष दृष्ट के समुपेत तीन भेद कहते हैं—
अतीत काल गहरा वर्तमान काल गहरा और
अनागत काल गहरा ।

अतीत काल विषय जो गाल्य वस्तु का परिच्छेद (ज्ञान) उसको अतीतकाल गहरा कहते हैं, जैसे आमाम्बर जाते हुए किसी दुग्ध ने रामने में नृप सहित भूमि धान्य के बहुत समस्त (देर) निपजे हुए, झुण्ड सरोवर नदी बावली नालाब आदि भरे हुए, और बाग घगीचे हरे भरे देखकर अनुमान किया कि इस स्थान पर अतीत काल में सुवृष्टि हुई है ।

जो वर्तमानकालविषयक ग्रहण हो उसको वर्तमान काल गहरा कहते हैं, जैसे गोवरी जाते हुए किसी मुनिराज ने अन्यन्त भाव भक्ति से प्रचुर भात पानी देते हुए बहुत शान्तरी को देखकर अनुमान किया कि यहा अभी वर्तमान काल में सुभिक्ष है ।

जो अनागत (भविष्यत्) काल विषयक ग्रहण हो उसको अनागत काल गहरा कहते हैं । जैसे आकाश का निर्मल पना, पर्वतों की श्यामता मिजली सहित

गणधरों के लक्षणरूप आगम तो आत्मागम हैं और अर्थरूप आगम अनन्तरागम हैं। तथा गणधरों के शिष्या के लक्षणरूप आगम अनन्तरागम हैं और अर्थरूप आगम परागम हैं। इस के बाद इन के शिष्य गणधरों के लक्षणरूप आगम और अर्थरूप आगम से दाना ही अनन्तरागम हैं किन्तु आत्मागम और अनन्तरागम नहीं हैं।

१० गुणगुणी द्वार.

ज्ञानादि का गुण रहते हैं उन ज्ञानादि गुणों को धारण करने वाले को गुणी कहते हैं।

११ सामान्य विशेष द्वार.

जो लक्षण से वस्तु का वर्णन किया जावे उस को सामान्य कहते हैं और जिस के द्वारा वस्तु का भिन्न भिन्न कर के विस्तार किया जावे उस को विशेष कहते हैं। इस सामान्य विशेष को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं, जैसे— (१) सामान्य से द्रव्य और विशेष से द्रव्य के दो भेद होते हैं— १ जीव द्रव्य और २ अजीव द्रव्य।



६ नमःप्रभा नारक और ७ नमस्तमाप्रभा नारक । (८) सामान्य से रत्नप्रभा नारक और विशेष से दो प्रकार- पर्याप्त नारक और अपर्याप्त नारक । इसी प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त इन दो ही भेदों से दोष छहों (१४) पृथिवियों के नारकों के भेद जान लेना चाहिये ।

(१०) सामान्य से निर्दिष्ट और विशेष से पांच प्रकार- १ पक्षेन्द्रिय, २ अक्षेन्द्रिय, ३ त्रान्द्रिय, ४ चतुरिन्द्रिय और ५ पञ्चेन्द्रिय । १३ सामान्य से एकेन्द्रिय और विशेष से पांच प्रकार- १ पृथ्वीकाय, २ अप्ताकाय, ३ मेज्जकाय, ४ वायुकाय और ५ वनस्पतिकाय ।

१८ सामान्य से पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार- १ तम मृत् २ चतुर्थ मृत् ३ पट्ट, पृ० १८ सामान्य से मृत् ४ पट्ट ५ चतुर्थ मृत् ६ पट्ट से दो प्रकार १ पर्याप्त मृत् २ अपर्याप्त मृत् ३ पट्ट पृथ्वीकाय । १९ सामान्य से पाँच पृथ्वीकाय और विशेष से दो प्रकार १ पर्याप्त पाँच पृथ्वीकाय और २ अपर्याप्त पाँच पृथ्वीकाय । इसी प्रकार (२०) अप्ताकाय, (२१) मेज्जकाय, (२२) वायुकाय और (२३) वनस्पतिकाय के भेद जान लेवे ।

२४ सामान्य से त्रिन्द्रिय और विशेष से दो

चार भेद होने हैं— १ प्राणि ध्यान २ गृह ध्यान, ३ धर्मध्यान और ४ गुरु ध्यान । इन चारों ही ध्यानों का विशेष वर्णन भगवती मन्त्र उपाधि मन्त्र आदि अनेक ग्रन्थों में जान लेना चाहिये ।

अब प्रकारान्तर से ध्यान के चार भेद कहते हैं—
१ पदम्य-ध्यान, २ पिण्डम्य-ध्यान, ३ रूपम्य-ध्यान
और ४ रूपार्तात-ध्यान ।

१ पदम्य-ध्यान— अग्निहोत्रादिक पांच परमेष्ठियों के गुणों का स्मरण कर के चित्त में उन का ध्यान करना उस को पदम्य ध्यान कहते हैं ।

२ पिण्डम्य-ध्यान— पिण्ड ध्याने अपने शरीर में रही हुई अपना आत्मा में अग्निहोत्र सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु के गुणों का चिन्तन करना, अधवा गुणों के गुणों में उपयोग की पकता करना उस को पिण्डम्य ध्यान कहते हैं ।

३ रूपम्य-ध्यान— जो रूप में रहा हुआ भी मेरा जीव अरूपी और अनन्तगुणी है ऐसा चिन्तन करना, तथा जो वस्तु का स्वरूप अनिजयावलम्बी होने बाद आत्मा के रूप की पकता चिन्तन उग को रूपम्य ध्यान कहते हैं । इन तीनों ध्यानों का समावेश पूर्वोक्त धर्म-ध्यान में होता है ।

चाराहादि कालिक ध्रुव अर्थात् सायु मुनिगज का पंच महाव्रत आग्रह के चारव्रत, अगार र्मे और अगगार र्मे आदि का जो वर्णन हो उस को चरण करणानुयोग कहते हैं । उस अनुयोग में नीति की प्रधानता है । उस का फल प्रमाद की निवृत्ति और अप्रमाद की प्राप्ति है ॥

२ धर्मकथा (प्रथमा) नुयोग— आख्यायिकावचन— जो ऋषिमापित शास्त्र— ज्ञानधर्मकथा आदि, और अन्य— त्रिपट्टिगत्याका पुण्य चरित्र तथा मोक्ष गामी जाँचों का भूत भविष्यत वर्तमान काल सम्बन्धी वर्णन हो उस को धर्मकथानुयोग कहते हैं । उस अनुयोग में अलङ्कार शास्त्र की प्रधानता है । उस का फल विषय कणाय की निवृत्ति और उपजम् वैराग्य की प्राप्ति है ॥

३ गणिता (काला) नुयोग— सत्त्वाशास्त्रवचन— जो सूर्यप्रजसि आदि सत्र तथा नरक निर्व्यञ्ज मनुष्य और देवों के सुख दुःख अवगाहना आयुष्य आदि का वर्णन हो, अथवा द्वीप समुद्र आदि तीन लोक (स्वर्ग-मर्त्य पाताल) का वर्णन हो, अथवा गाङ्गेय भद्र आदि भद्र जाल का वर्णन हो उस को गणितानुयोग कहते हैं । इस अनुयोग में परिक्रमाष्टक (गणित शास्त्र)

की प्रधानता है। इस का फल चित्तव्यग्रता की निवृत्ति और चित्त की एकाग्रता की प्राप्ति है।

४ द्रव्यानुर्योग-दृष्टिवाद वचन- जो पद द्रव्य का विचार, सात नव, नव पदार्थ, पञ्चास्तिकाय और प्रमाण आदि निश्चय नया का अधन है उस को द्रव्यानुर्योग कहते हैं। इस में न्याय शास्त्र की प्रधानता है। इस का फल सज्जगति दापा की निवृत्ति और सम्यक्त्व की निर्मलता की प्राप्ति है ॥

२१ जागरणा (३) द्वार

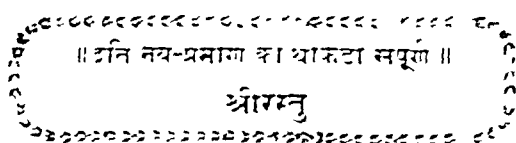
जागरणा- निद्रा के क्षय होने पर जा जागृत होना अर्थात् जागना उम्र का जागरणा कहते हैं। इस के तीन भेद हैं- १ धर्म जागरणा, २ अधर्म जागरणा और ३ कुटुम्ब जागरणा।

१ धर्म जागरणा- धर्म चिन्तन के लिए जागना उस को धर्म जागरणा कहते हैं। इस के तीन भेद हैं १ बुद्ध जागरणा, २ अबुद्ध जागरणा और ३ सुदक्ष जागरणा। १ बुद्ध जागरणा - जो अरिहन्त भगवान्, उत्पन्न हुआ केवलज्ञान और केवल दर्शन को धारण करने वाले घावन् सब भाव को जानने वाले तथा सब पदार्थ को देखने वाले और दूर हुई है अज्ञान रूप

पंच परमेश्वरी को नमः, गुरुं जिन आजा लाल ।
श्रीजिनधर्म प्रसाद से, वर्गे मंगल माल ॥३॥

अन्तिम मङ्गलम् -

ब्राह्मी चन्दनवालिका भगवती राजामती द्रोपदी,
कौशल्या च मृगावती चमूलमामता च मद्रा मती ।
कुन्ती शीलवती नलम्ब दयिता चला प्रभाकर्यापि
पद्मावन्यापि सुन्दरी दिनमुग्धे कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥



Printed at the Sethia Jan Printing press
BIKANER 20-1-28 3000

